धूमिल का काव्य : मूल्य और मूल्यांकन

डॉ. आर.पी. वर्मा,
असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
इन्दिरा गाँधी राजकीय महिलामहाविधालय,
रायबरेली, उ.प्र

धूमिल के अब तक तीन काव्य–संग्रह–"संसद से सड़क तक", "कल सुनना मुझे" तथा "सुदामा पाण्डेय का प्रजातन्त्र" प्रकाशित हुये हैं। इन संग्रहों के एक सौ बाइस कविताओं में यौन–प्रतीकों जैसे–"मूतना", "गर्भ गद्गर्द औरत" "मासिक धर्म" "गर्भपात" "वीर्यपात" "नेकर का नाड़ा" "लड़कियों का नाड़ा" "लड़कियों के स्तर" "वीर्य वाहिनी नालियां" "औरत की लालची जांघ" "उबासियों में ऊंघते नितम्ब" एवं "भूखे गर्भाशय" प्रभूति जैसे शब्दों का खुलकर प्रयोग किया गया है। आलोचकों ने इस आधार पर उनकी आरंभिक कविताओं की अकवियों को रचनाओं से प्रभावित मानते हुये "अकविता" आन्दोलन से सम्पृक्त किया है। "साठोत्तरी" हिन्दी कविता : परिवर्तित दिशाएँ" शीर्षक अपने शोध–प्रबंध में डॉ. विजय कुमार लिखते हैं "धूमिल की चेतना कविता के जिस दौरन में विकसित हुईं उसमें एक ओर नयी कविता अपनी अंतिम सांस ले रही थी, दूसरी ओर अकवितावादियों का हल्ला था। कोई भी कविता अपने समय में एक बार कारगर हस्तक्षेप के बावजूद अपने समय से सीमाओं से किसी हद तक आबद्ध भी होती है। सम्पूर्ण अस्वीकार की मुद्रा सातवें दशक के उत्तरार्द्ध का केन्द्रीय मूड था, हालांकि यह भी सच है कि कोई भी सत्य सम्पूर्ण अस्वीकार का नहीं होता। अस्वीकार के असिरेक में परिवर्तन को अदम्य आकांक्षा ही विहित होती है। हालांकि वह एक विशेष दौर में भूमि के नीचे बहने वाली धारा की तरह अदृश्य रहती है।..... धूमिल की कविता में घर–परिवार, स्त्री–बच्चों की करुणा वाला रूप नहीं बराबर है और अकविता का प्रभाव उनके यौन–प्रतीकों और बिम्बों पर स्पष्ट देखा जा सकता है।" धूमिल को काव्य–चेतना की सही पहचान के लिये यह जानना बहुत जरूरी है कि आरम्भ में उन्होंने "अकविता" आन्दोलन में हिस्सेदारी की थी।"

दरअसल इसका कहीं स्पष्ट प्रमाण या संकेत तक नहीं उपलब्ध होता है कि धूमिल ने खुद अकविता आन्दोलन से जुड़ने की बात कही हो। विनोद भारद्वाज के नाम लिखे धूमिल के पत्र जो सहारनपुर से 25 नवम्बर, 1967 को लिखा गया है, से यह बात और भी साफ हो जाती है। उन्होंने लिखा है कि "अकविता–7" में मेरी एक कविता "शांतिपाठ" छप गई है और तुम तो जानते हो कि अकविता मेरे लिये कोई आन्दोलन नहीं सिर्फ एक छोटी पत्रिका है। नयी धारा में मेरी एक कविता मकान छपी है। पढ़कर राय देना।.... 1967 का वर्ष धूमिल के लिये खास महत्वपूर्ण कहा जा सकता है, क्योंकि इस समय वे एक साथ कुत्ता 'एक बूढ़ा में', "शांतिपाठ", 'कविता', 'शहर का व्याकर', एवं मोचीराम लिख रहे थे। 'संसद से सड़क तक' काव्य संकलन की प्रथम कविता "कविता" है। इसकी एक पंक्ति इस प्रकार है– "हर लड़की तीसरे गर्भपात के बाद धर्मशाला जाती है।" लेकिन विनोद भारद्वाज को लिखे गये अपने पत्र में उन्होंने संकेत दिया है कि वे "कविता" के स्थान पर "मोचीराम" को छपवाना अधिक पसंद करेंगे। वे लिखते हैं– "कविताएँ" भेज रहा हूँ। खास तौर से एक कविता "मोचीराम" पर आपकी राय जानना चाहता हूँ।... 1. मोचीराम, 2. कुत्ता और 3. एक बूढ़ा में, (अलग डाक से)

भेज रहा हूं। जिसे उचित समझें इस्तेमाल कर लें।" आगे लिखते हैं, "पत्र के अनुसार तीन कविताएँ भेज रहा हूँ। अपनी पसंद और सुझाव इन्हें पढ़कर जल्दी लिखें। एक अतिरिक्त कविता जिसका शीर्षक "कविता" है, भी साथ में है।..... यदि आप एक ही कविता छापना चाहें तो मेरी तरफ से मैं चाहूंगा कि "मोचीराम" ही छापें।" इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अकविता आन्दोलन से जुड़ने का मोह धूमिल में कतई नहीं था।

वास्तव में विभिन्न काव्यान्दोलनों की चुनौती देते हुये धूमिल ने अपना एक अलग व्यक्तित्व सदैव बनाए रखा। काशीनाथ सिंह का यह कथन बिल्कुल ठीक है– "धूमिल के आने तक आलोचना का मुंह कहानी की और था। वह आया और उसने आलोचना का मुंह कविता की ओर कर दिया। अपनी ओर कर लिया। अकेले आलोचक की नहीं, कवि भी घूम गए। धूमिल ने "अकविता", "भूखी कविता", "श्मशानी कविता" आदि की लालसाओं को पटरा कर दिया और मूंछों पर गुर्रा देता रहा, उस पट्ठे की तर जो अखाड़े में चुनौती देते हुये घूम रहा हो कि जो चाहे आये और हाथ मिलाये।" इसके बावजूद कुछ समीक्षकों ने शब्दों के प्रयोगों के आधार पर धूमिल की अकविता आन्दोलन से सम्पृक्त कर एक प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। डॉ. मंजुल उपाध्याय लिखती हैं– "राजकमल चौधरी तथा अन्य अकविता–वादियों के प्रभाव से, धूमिल ने कहीं–कहीं नारी को नग्न करने का प्रयास किया है।..... धूमिल पर राजमल चौधरी और कलकत्ता की भूखी पीढ़ी के कवियों का प्रभाव है। कोई मार्क्सवादी दृष्टि का कवि, किसी प्राकृतिक मनः–स्थिति में, नारी के विषय में उद्धत भी हो सकता है, किन्तु मार्क्सवाद और क्रांति का बोध नारी को नग्न कर, उसके प्रति औद्धत्व का समर्थन नहीं सिखा सकता, क्योंकि क्रान्तिकारी नारी को साथी मानते हैं, मात्र "औरत" नहीं। नारी समाजवादी व्यक्ति के लिये जीवन–संघर्ष की "साथी" है, मात्र कामिनी या भोग्या नहीं।" जिस कविता का उल्लेख डॉ. मंजुल उपाध्याय ने किया है, उसी का उल्लेख करते हुये डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं– "धूमिल ने राजकमल चौधरी पर जो कविता लिखी है, उससे जाहिर हो जाता है कि राजकमल चौधरी का असर उन पर कम नहीं रहा है। कविता में धूमिल ने उसका चरित्र करीब–करीब अपने "हीरो" के रूप में उभारा है।" धूमिल पर अकवितावादियों के प्रभाव के सन्दर्भ में उन समीक्षकों ने इस कविता से जो उद्धरण दिए हैं वे इस प्रकार हैं –

"औरतें योनि की सफलता के बाद
गंगा का गीत गा रही हैं"
एवं
मासिक धर्म रुकते ही सुहागिन औरतें
सोहर की पंक्तियों का रस
(चमड़े की निर्जनता को गीला करने के लिये)
नये सिरे से सीखने लगती है
जांघों में बढ़ती हुई लालच से
भविष्य के रंगीन सपनों को
खोजने लगती है।"

इस कविता में धूमिल ने हिजड़ों, लून, शराब, गांजा, गुप्त रोगों, वेश्याओं, गंजेड़ियों आदि शब्दों का भी जमकर इस्तेमाल किया है जो राजकमल के सन्दर्भ में अनुपयुक्त कदापि नहीं है। इस प्रकार के अंशों के उद्धृत कर धूमिल की कविता पर अकवितावादियों का प्रभाव प्रमाणित करना सही प्रतीत नहीं होता है। डॉ. नामवर सिंह ने उनकी कविताओं के सम्बन्ध में अपनी एक बातचीत में यह स्पष्ट किया है कि– "अकविता से धूमिल को सम्बद्ध करने का कारण शायद यह है कि उनकी आरम्भिक कविताओं में कहीं–कहीं "मासिक धर्म", "वीर्यपात", "जांघों का जंगल" जैसे

कुछ सुरूचिभंजक शब्द मिल जाते हैं, किन्तु मेरे ख्याल में धूमिल पर यह असर सीधे एलेन गिंसबर्ग से आया था, जो इत्तफाक से 1962–63 के दिनों में बनारस में थे और धूमिल उनसे अक्सर मिलते रहे। शायद इसमें कुछ हाथ राजकमल चौधरी का भी है जिनकी मृत्यु पर धूमिल ने एक कविता भी लिखी थी। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि सेक्स सम्बन्धी वर्जित शब्दों का प्रयोग धूमिल ने अकविता के कवियों से भिन्न सन्दर्भ और भिन्न ढंग से किया है। धूमिल की कविता मे ऐसे शब्द कुछ इस तरह आते हैं जैसे गांव के लोगों की सामान्य बातचीत के बीच अनायास का सहज भाव है।" डॉ. नामवर सिंह का यह कथन शत–प्रतिशत उचित प्रतीत होता है, क्योंकि धूमिल वास्तव में गंवई अनुभव और किसानी संस्कार के कवि हैं। उन्होंने किसान की आँख से ही इस दुनिया की देखा है। उनका यह किसानी संस्कार उनकी प्रथम कविता से लेकर अन्तिम कविता तक परिव्याप्त है। धूमिल अकविता–आन्दोलन के साथ जुड़े हुए थे– इस तथ्य को तो पूर्ण रूप से नहीं स्वीकारा जा सकता। लेकिन इस बात का प्रमाण गोविन्द उपाध्याय के संस्मरण में मिलता है कि धूमिल को राजकमल चौधरी की कविता–संग्रह के साथ कुछ मोह सा था। वे लिखते हैं कि – "पढ़ने के लियि उनके यहाँ से कुछ पत्र–पत्रिकाएँ उठा लीं और राजकमल चौधरी का संकलन भी। इस संकलन से धूमिल की कुछ ममता सी थी। कहने लगे, "प्यारे ले तो जाओ लेकिन अब अप्राप्य है, संभालकर रखना।" इसमें लगभग हर पृष्ठ पर धूमिल की टिप्पणियां है।" इसी संस्मरण में गोविन्द उपाध्याय एक–स्थल पर लिखते हैं कि– "कभी–कभी गिन्सबर्ग धूमिल की अपनी कविताएँ सुनाया करते थे। यहाँ तक कि एक बार धूमिल के घर में होने वाली गोष्ठी में गिन्सबर्ग विशिष्ट वक्ता तक थे।" इन उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि राजकमल चौधरी और गिन्सबर्ग जैसे कवियों की मित्रता के फलस्वरूप धूमिल की कविता में "योनि" "संभोग" "मासिक धर्म" आदि शब्दों के प्रयोग हुए हों। किन्तु इससे पूर्व की "भूखी पीढ़ी" का जीवन–दर्शन धूमिल को पूरी तरह अपनी लपेट में ले लेता किन्तु डॉ. नामवर सिंह का परिचय धूमिल को मार्क्सवाद की ओर ले आया। इस परिचय से उनको रुचि मार्क्सवाद में तो नहीं लेकिन मार्क्सवादी साहित्य में बढ़ी–खास तौर से हिन्दी की प्रगतिशील समीक्षा में।"

धूमिल की काव्य–यात्रा

किसी भी रचनाकार के लिये उसकी सर्जना का प्रथम बिन्दु महत्वपूर्ण हुआ करता है। साहित्यकारों ने जब–जब अपने रचना–काल के इस प्रारम्भिक लम्हों को याद किया है तब–तब उन्होंने अपनी सम्पूर्ण काव्य–चेतना के उद्‌गम की तलाश भी वहीं से की है। न केवल छायावादी कवि सुमित्रानन्दन पंत, अपितु अज्ञेय जैसे कवियों ने भी मेरी प्रथम कविता शीर्षक निबन्ध में अपने काव्यारम्भ के सोपान की चर्चा की है। धूमिल को यह अवसर नहीं मिला कि वे अपने जीवन काल में एक प्रतिष्ठित कवि के रूप में इस प्रकार का उद्‌घाटन अपने पाठकों के सम्मुख करते। तब भी विभिन्न स्रोतों से उनके काव्यारम्भ की तिथि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। "कल सुनना मुझे" संकलन की प्रस्तावना में राजशेखर ने लिखा है कि– "ग्यारह वर्ष की अल्पायु में मिडिल पास करने के बाद वरुणा के तट पर बैठकर अपने सहपाठी मित्र बनारसी लाल श्रीवास्तव के साथ कविता की जुगलबन्दी करने लगा था।" धूमिल के ज्येष्ठ पुत्र रत्नशंकर का भी यही मत है। वे लिखते हैं– "तुकबन्दियाँ तो वे सातवीं कक्षा में थे तभी से करने लगे थे, वैसे उनकी एक पाण्डुलिपि 1957–58 की मिली है जिसमें गीत, बिरहा, दोहा, शेर आदि रचनाओं के अलावा कहानियां एवं निबन्ध भी हैं और तभी से लेखन का अबाध सिलसिला चलता रहा।" इस प्रकार उनके रचनारम्भ की तिथि सन् 1951 है।

सन् 1951 से अपनी काव्य –यात्रा आरम्भ कर धूमिल 14 जनवरी, 1975 तक निरन्तर रचनारत रहे। धूमिल के काव्यात्मक विकास को रेखांकित करते हुये डॉ. हुकुमचन्द राजपाल लिखते हैं– "धूमिल का सम्पूर्ण कवि व्यक्तित्व एक–सा नहीं रहा है। अब तक धूमिल के प्रकाशित काव्य–संग्रह "बांसुरी जल गई" (1961) "संसद से सड़क तक" (1972) तथा "कल सुनना मुझे" (1977) कथ्य एवं भाषा की दृष्टिसे एक दूसरे से पृथक कोटि के हैं। इसे कवि का विकास, काव्य का विकास अथवा युग की आवश्यकताओं के प्रति कवि का झुकाव–कुछ भी कहा जा सकता है। कथ्य की दृष्टि से तो अन्तिम दोनों संग्रहों में आंशिक समता है पर काव्य–भाषा विशेष में रूप के आधार पर पर्याप्त अन्तर है। प्रथम संग्रह तो गीतात्मक शैली में है।" डॉ. राजपाल ने गीतात्मक शैली में लिखे तथा 1961 में प्रकाशित "बांसुरी जल गई" नाम के जिस काव्य–संग्रह की चर्चा की है उस पर मतान्तर है। सर्वप्रथम धूमिल के पुत्र रत्नशंकर का मत उल्लेखनीय है। वे लिखते हैं– "प्रकाशित रूप में, सबसे पहले उनकी एक कहानी "फिर वह जिंदा है" (साकी जून 1960) मिली है। इसके बाद कोमल कान्त पदावली में गीतों का प्रकाशन होता रहा। 1961–62 के दौरान तमाम गीत–रचनाएँ प्रकाश में आयीं। इस बीच "नीहार" (जून 1961) में एक गीत प्रकाशित हुआ। उसी के आवरण–पृष्ठ पर "बांसुरी जल गई" गश्त के अगले अंक में प्रकाशित होने की सूचना है। परन्तु यह गीत कहीं मिलता नहीं है और न "नीहार" का अगला अंक ही मिलता है। वैसे "बांसुरी जल गई" उनकी कोई गीत रचना थी अवश्य, क्योंकि इस गीत को किसी सज्जन के विशेष आवाह्न पर उन्होंने गया था– "श्वास के उच्छ्वास से जल गयी बांसुरी जल गयी। इस प्रकार उनका कोई गीत–संकलन प्रकाशित नहीं हुआ। हाँ, योजना रही होगी।" इस उद्धरण के अनुसार "बांसुरी जल गई" नाम से कोई भी कविता या गीत–संग्रह धूमिल का प्रकाशित नहीं हुआ। लेकिन गोविन्द उपाध्याय का कथन ठीक इसके विपरीत है। वे लिखते हैं– "प्रथम भेंट में ही धूमिल ने मुझे बताया था कि वे गीत लिखते हैं और उनका एक संकलन "बांसुरी जल गई" प्रकाशित है। उन्होंने कुछ गीत गाकर भी सुनाये थे जो मंच–मोहन स्तर के अच्छे गीत थे।" रत्नशंकर और गोविन्द उपाध्याय दोनों ने "बांसुरी जल गई" का उल्लेख किया है। वैसे यह संग्रह अनुपलब्ध है। लेकिन इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि धूमिल ने गीतों से अपनी काव्य–यात्रा आरम्भ की।

धूमिल जिस समय बनारस में रह रहे थे उस समय अस्सी साहित्यकारों तथा साहित्यानुरागियों की जमघट का अच्छा–खासा स्थल था। नामवर सिंह शिव प्रसाद सिंह, रामचन्द्र पाण्डेय, भगवतशरण उपाध्याय, ठाकुर प्रसाद सिंह, शम्भूनाथ सिंह, त्रिलोचन शास्त्री, काशीनाथ सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, केदारनाथ सिंह आदि अनेक लोग आये दिन जुटते थे। इन साहित्यकारों के साथ रहकर धूमिल को नयी कविता को जानने समझने का यथेष्ट अवसर मिला। उन दिनों प्रत्येक साहित्यिक गतिविधि से धूमिल अपने को जोड़ने का प्रयास करते थे। सन् 1962 तक धूमिल अपनी काव्य दिशा का निर्धारण नहीं कर पाये थे। एक तरु वे गीत लिख रहे थे तो दूसरी तरफ वैज्ञानिक कविता की सम्भावना को भी टटोल रहे थे। उस समय धूमिल ने इस तर्ज की भी कविताएँ लिखी हैं, जिनमें वैज्ञानिक उपकरणों तथा तथ्यों का बिम्ब के रूप में उपयोग किया गया है।

इसी क्रम में वे नामवर सिंह के साहचर्य में आये। यह साहचार्य उनके लिये कई मायनों में लाभदायक सिद्ध हुआ। नामवर सिंह की सलाह ने जहां एक ओर उनकी कविता को मजबूत धरातल प्रदान किया वहीं दूसरी ओर शिल्प एवं बिम्ब, योजना में वे काफी सजग होते गये।

1962 में भारत–चीन संघर्ष के समय युद्ध सम्बन्धी कविताएं लिखी जाने लगीं। धूमिल ने भी इस मजमून पर अनेक रचनाएँ कीं, जिनका उपयोग बाद में "पटकथा" कविता में किया–

"और तभी सुलग उठा पश्चिमी सीमान्त

.....ध्वस्त.....ध्वस्त.....ध्वान्त....ध्वान्त।"

धूमिल की इस पंक्ति को ज्ञानोदय में नामवर सिंह ने उद्धृत किया था। इस घटना से धूमिल में आत्मविश्वास बढ़ा और साथ ही उनकी चचा भी होने लगी।

"सन् 1964 के दौरान वे काफी दिनों तक इस बात की वकालत करते रहे कि कविता का खास विषय होना चाहिए और इसके लिये अनेक पेशेवर लोगों से अच्छा विषय क्या हो सकता है। इसी दौर में उन्होंने "मोचीराम" की रचना की।" 1966–67 के आसपास के आसपास वे कभी–कभी कंचनकुमार को पत्रिका "आमुख" में भी प्रकाशित होते रहे।

1964–65 के बाद की कविताओं में उन्होंने तुकबन्दी पर विशेष जोर दिया। क्योंकि कविता पर चर्चाओं के क्रम में डॉ. नामवर सिंह ने उनसे कहा था– ""कविता में तथ्य का महत्व तो निर्विवाद है किन्तु तुकबन्दी के कारण पंक्तियां तेज धार की तरह असर करेंगी।" इसके बाद से धूमिल ने तुकबन्दी पर काफी ध्यान दिया और अच्छी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इन्हीं दिनों वे क्रमशः अपनी कविताओं में आम लोगों की समस्याओं से जुड़ने की रुझान की अपनी काव्य मानसिकता में बढ़ाते गये। तुकबन्दी का लोभ काफी दिनों तक उनमें बना रहा। 1971 तक आते–आते वे तुकबन्दी से उबरने का प्रयास करने लगे। इस समय तक धूमिल में काफी परिवर्तन आने लगा था। उन्हें ऐसी धुन सवार हो गयी कि दुनियार को बदल देना है। उनमें राजनीतिक जागरूकता भी काफी बढ़ गयी थी। एक विधा के रूप में कविता पर अटूट आस्था होने पर भी वे कहते थे–

"कविता में जाने से पहले मैं

आपसे ही पूछता हूँ

जब इससे न चोली बन सकती है

न चौंगा

तब आपै कहो

इस ससुरी कविता को

जंगल से जनता तक

ढोने से क्या होगा?"

किन्तु कविता पर दृढ़ आस्था का अनुमोदन वे इस पंक्ति में बखूबी करते हैं–

"कविता

भाषा में

आदमी होने की तमीज है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि धूमिल गीतों से शीघ्र ही सार्थक कविता की ओर उन्मुख हो जाते हैं। उनका पहला काव्य–संग्रह उनके जीवन–काल में सन् 1972 में "संसद से सड़क तक" नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें संकलित कविताओं का रचनाकाल 1965 से 1970 तक है। इसके बाद उनके मरणोपरान्त दो काव्य–संग्रह "कल सुनना मुझे" और "सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र" क्रमशः 1977 तथा 1984 में प्रकाशित हुआ। इन दोनों संग्रहों में 1970 से लेकर 14 जनवरी 1975 तक की रचनाएँ सम्मिलित की गई हैं। इन दोनों संग्रहों की कविताओं का चयन सम्पादकों द्वारा किया गया है। किसी भी कविता के रचनाकाल का संकेत नहीं किया गया है। अतएव यह कहना मुश्किल है कि 1984 में प्रकाशित "सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र" की कविताओं का रचनाकाल 1970–71 के आसपास का है या 1977 में प्रकाशित "कल सुनना मुझे" संग्रह में सामने आने

वाली कविताओं का। वैसे धूमिल की आखिरी कविता जिसका रचनाकाल 14 जनवरी, 1975 है, को उनका दूसरा काव्य संग्रह "कल सुनना मुझे" में संकलित किया गया है। यों रचनाकाल की दृष्टि से इसे "सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र" में सम्मिलित करना चाहिए था। इस काव्य–संग्रह में दो शब्द लिखते हुये धूमिल के पुत्र रत्नशंकर लिखते हैं– "1970 के बाद की लगभग सभी महत्वपूर्ण कविताओं को इस संग्रह में समेटने का मेरा आग्रह रहा है। इसमें लगभग पच्चीस कविताएँ उनके जीवन–काल में ही पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। शेष अप्रकाशित पाण्डुलिपी से ली गई है। इन संग्रहों के अलावा 1983 में डॉ. शुकदेव सिंह ने "धूमिल की कविताएँ" शीर्षक काव्य–संकलन का सम्पादन किया है। इसमें "संसद से सड़क तक" संग्रह से लेकर "सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र" तक की सत्ताईस उल्लेखनीय कविताएँ संकलित है। अतः धूमिल के काव्य–विकास को समझने के लिये किसी एक संग्रह को आधार बनाकर समग्रता में उनकी छोटी–बड़ी महत्वपूर्ण कविताओं को आधार बनाना उचित होगा।

जिन दिनों "जनयुग", "आलोचना", "आरम्भ", "अकथ", "कल्पना", "नई–धारा", और "आमुख", पत्रिकाओं के माध्यम से धूमिल की कविताएँ सामने आईं उन दिनों कुछ आलोचकों की कविता में एक प्रकार की गति दिखाई दी। धूमिल की कविता ने सभी को अपनी ओर आकर्षित किया। इसका कारण यह था कि सन् साठ के बाद के काव्य में एक नये ढंग की अभिव्यक्ति को उन्होंने जन्म दिया। उन्होंने ठोस जीवन–सन्दर्भों तथा राजनीति को अनुभव का विषय बनाया एवं अपने समाकालीनों में एकदम ताजे और पाठकीय संवेदना को झकझोर देने वाले मुहावरों का प्रयोग किया 1966 की बिहार और उड़ीसा की भुखमरी तथा अकाल की घटना 1967 का भाषा–आन्दोलन एवं आम–चुनाव, 1968 में होने वाला धूमिल का स्थानान्तरण, नक्सलबाड़ी आन्दोलन और इन सबके बीच गांव–बिरादरी, पंचायत तथा जमीन के झगड़ों के सिलसिले में कचहरी की भाग–दौड़ आदि ऐसे अनुभव हैं जिनमें धूमिल के कवि का विकास होता रहा है।

ऊपर इसका उल्लेख हो चुका है कि 1964 के दौरान धूमिल ने इस बात पर जोर दिया कि कविता का खास विषय होना चाहिए और इसके लिये पेशेवर लोगों से अच्छा विषय क्या हो सकता है। और उन्होंने "मोचीराम" की रचना की। सजीव ज्वलन्त बिम्ब, तीखे व्यंग्य, नाटकीय कुशलता की दृष्टि से यह सर्वापि प्रभावशाली कविता है। शिल्प की दृष्टि से भी कविता सुगठित है। अर्थतत्व की दृष्टि से कहा जा सकता है कि वर्ग–दृष्टि–सम्पन्न लेखक ही ऐसी कविता की रचना कर सकता है। मोचीराम कहता है –

"मोरी निगाह में
न कोई छोटा है
न को ई बड़ा है
मेरे लिये हर आदमी एक जोड़ी जूता है।
जो मेरे सामने मरम्मत के लिये खड़ा है।"

मोचीराम का यह कहना पेशे के लिहाज से प्रेरित है और अभिधेयार्थ के अतिरिक्त लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ से संयुक्त है। लेकिन जब हम कविता के बीच से गुजरते हैं तो पाते हैं कि मोचीराम को हर आदमी सिर्फ जूता ही नजर नहीं आता है, बल्कि उसे हमेशा यह ख्याल रहता है कि –

"पेशेवर हाथों और फटे हुये जूतों के बीच
कहीं न कहीं एक अदद आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं
जो जूते से झाँकती हुई अँगुली की चोट छाती
पर
हथौड़े की तरह सहता है।"

यही नहीं, यह मोचीराम जूतों की जाति पहचानता है और अच्छी तरह पहचानता है –

"मसलन एक जूता है
जूता क्या है–चकतियों की थैली है
बदले एक चेहरा पहचानता है
जिसे चेचक ने युग लिया है।"

ऐसी चकतियों वाले जूते पहने हुए बाबूजी से वह कहना चाहता है कि "बाबूजी सइ पर पैसा क्यों फूंकते हो ?" पर वह नहीं कह पाता। उसकी आवाज लड़खड़ा जाती है। कारण यह कि उसके भीतर से एक आवाज आती है– "कैसे आदमी हो, अपनी जाति पर थूकते हो", हम बाबूजी को मोचीराम जानी जाति अर्थात् अपने वर्ग का समझता है और उससे गहरी सहानुभूति रखता है। अतः वह पूरी सावधानी के साथ उसके जूतों की मरम्मत करता है। वह कहता है –

"आप यकीन करें, उस समय
मैं चकतियों की जगह आँखें टांकता हूँ।"

जूते की जो दूसरी जाति है उसमें मध्यवर्गीय संस्कारों के लोग आते हैं। धूमिल के शब्दों में–

"यह कोई बनिया है
या बिताती है
मगर रोब ऐसी कि हिटलकर का नाती है।"

ऐसे लोग मोचीराम को मरम्मत के वक्त तो आदेश पर आदेश देते रहते हैं और घण्टों खटवाते हैं, किन्तु मजदूरी देते समय गुर्राते हैं और कुछ सिक्कें फेंककर आगे बढ़ जाते हैं। धूमिल ने हिटलर के इस नाती का चित्र निम्नांकित शब्दों में अंकित किया है–

"इशे बाद्धो, उशे काट्टो, हियां ठोक्को, वहाँ
पीट्टो
घिश्शा दो, अइशा चमकाओ, जूते को पेना बनाओ
....ओफफ्! बड़ी गर्मी है रुमाल से हवा
करता है, मौसम के नाम पर बिसूरता है
"सड़क पर" "जातियों–जातियों"
बानर की तरह घूमता है
गरज यह कि घण्टे भर खटवाता है
मगर नामा देते वक्त
साफ नट जाता है
"शरीफों को लूटते हो" वह गुर्राता है
और कुछ सिक्के फेंककर
आगे बढ़ जाता है।"

लेकिन यह हिटलर का नाती अपनी जाति पहचानने वाले यानि कि वर्ग–सजग इस मोचीराम से बाजी जीतकर नहीं जा सकता। मोचीराम कहता है कि–

"चोट जब पेशे पर पड़ती है
तो कहीं–न–कहीं एक चोर की
दबी रह जाती है
जो मौका पाकर उभरती है
और अंगुली में गड़ती है।"

किन्तु ऐसा व्यवहार वह सबके साथ नहीं करती कपितु हर वक्त यह ख्याल रखता है कि –

".....जूते
और पेशे के बीच
कहीं–न–कहीं एक अदद आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं
जो जूते से झांकती हुई अंगुली की चोट
छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है।"

जूते की एक तीसरी जाति जो उच्च–वर्ग की होती है उसका उल्लेख कविता में धूमिल ने नहीं

किया है। कारण शायद यह कि मोचीराम के पास ये लोग जूतों को मरम्मत करवाने नहीं पहुंचते हैं। सम्भावना इस बात की अधिक है कि ये लोग मरम्मत किया हुआ जूता पहनते ही नहीं और यदि पहनते भी होंगे तो इनके नौकर–चाकर ही उन्हें लेकर मोचीराम के पास पहुंचते होंगे। अतएव इस तीसरी जाति के जूते की कविता में उल्लेख न होना कविता को यथार्थवादी दृष्टिकोण से सर्जित सिद्ध करता है।

डॉ. अष्टेकर इस कविता को वर्गवादी विचारों वाली कविता मानने के पक्ष में नहीं है। इस सम्बन्ध में वे कहते हैं– "यह कविता सिशुद्ध मार्क्सवादी चिन्तन या फिर वर्गवादी विचारों वाली कविता नहीं। इसमें सच्चे प्रगतिवादी किसी दर्शन विशेष के प्रति अप्रतिबद्ध चिन्तन का एक स्वस्थ रूप उपलब्ध है। सामाजिक वर्गों के आधारों के रूप में जहाँ कवि अभाव और सुविचारों को ग्रहण मानता है वहीं शब्दों की जानकारी और शब्दों की गैर जानकारी के आधार पर भी दो सामाजिक वर्ग उत्पन्न होने की कल्पना कर लेता है। वस्तुतः शिक्षितों और अशिक्षितों, साक्षरों और निरक्षरों के बीच की सहस्रों वर्ष पुरानी खाई को और इस कविता में केवल इंगित मात्र किया गया है। इस विषय का विस्तार इसी कवि की कविता "प्रौढ़–शिक्षा" में देखा जा सकता है। केवल पेशा और संवेदना की शक्ति का कोई सम्बन्ध न होने की बात को "मोचीराम" कविता में प्रतिष्ठित करने का भरसक प्रयास किया गया है।" डॉ. हुकुमचन्द राजपाल मोचीराम कविता को "वर्ग चेतना की सार्थक अभिव्यक्ति" मानते हुए लिखते हैं कि "मोचीराम अपने आप आए लोगों का कविता में चारित्रिक मूल्यांकन भी करता है। पहले वर्ग के लोगों से उसे सहानुभूति है। उनका सम्बन्ध उसकी अपनी जाति से है। उनकी अपनी विशेषताएं हैं–सम्भवतः उन लोगों के पास कई बार जूता गँठवाने के लिये पैसे भी नहीं होते, नंगे पाँव या फटे जूते में उनका गुजर होता है। इस स्थिति को कवि ने कहीं–न–कहीं दिखलाया है, पर नाटकीय अंदाज से सभी कुछ इसमें समाया हुआ है। दूसरे मध्यवर्ग के लोगों का चित्रण करते हुए उनके बाह्य प्रदर्शन एवं आन्तरिक खोखलेपन का पर्दाफाश किया है। "हिटलर का नाती" कहकर व्यंग्य प्रहार भी किया है। कोई भी पेशा व्यवसाय क्यों न हो उसमें आत्म–सम्मान होना चाहिए। इसकी हत्या होने पर आन्तरिक क्षोभ एवं आक्रोश पनपता है। .... काम पेशा अपने–आप में बुरा नहीं होता–निष्ठा, विश्वास एवं ईमानदारी से किया गया कोई भी कार्य व्यर्थ नहीं जाता। किन्तु प्रत्येक कृत एवं उसके प्रतिदान में परिश्रम को दृष्टि में रखना चाहिए। इसीलिए आदमी को तार्किक होना चाहिए।" मोचीराम का कहना भी यही है कि–

"जिन्दा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है
तो रामनामी बेचकर या रण्डियों की
दलाली करके रोजी कमाने में
कोई फर्म नहीं है।"

इस प्रकार कवि की दृष्टि सदैव पेशा की ईमानदारी के प्रति अधिक रही है और उनका झुकाव भी निम्न मध्यवर्ग की और अधिक रहा है। कविता के अन्त में धूमिल कहते हैं कि–

"जबकि मैं जानता हूँ "इनकार से भरी हुई एक
चीख"
और "एक समझदार चुप"
दोनों का मतलब पक है–
भविष्य गढ़ने में, "चुप" और "चीख"
अपनी–अपनी जगह एक ही किस्म से
अपना–अपना फर्ज अदा करते हैं।"

कवि के भीतर दर्द है, लेकिन वह विरोध और क्रांति की पृष्ठभूमि का निर्माण करता है। इस दर्द से मुक्ति की चाचना कवि नहीं करता, क्योंकि

याचना दयाभाव जाग्रत करके असहाय भावना को जन्म देती है जिससे अस्तित्व ही निरर्थक हो जाता है। कवि इस सभ्यता के अभिशाप की पीड़ा को झेलता है और यह झेलने की शक्ति उसे अपनी आस्था से मिली है। कवि संघर्ष के दर्द को झेलता हुआ अपने अस्तित्व को लगातार एक अर्थ प्रदान करता रहता है।

1966 में बिहारी और उड़ीसा में भीषण अकाल पड़ा था। इन प्रदेशों में त्राहि–त्राहि मची थी। धूमिल ने अपने "अकाल दर्शन" शीर्षक कविता में उसी का उल्लेख किया है। कविता के प्रारम्भ में कवि किसी से प्रश्न करता है–

"भूख कौन उपजाता है
वह दुरादा जो तरह देता है
या वह घृणा जो आँखों पर पट्टी बाँधकर
हमें घास की सट्टी में छोड़ जाती है ?"

लेकिन इसका कोई उत्तर उन्हीं नहीं मिलता। फिर वह सहसा स्वयं को अपने सवालों के सामने खड़ा पाता है और उसकी समक्ष में पूरी तौर पर आजादी और गाँधी के नाम पर चलने वाला मुहावरा आ जाता है–

"और सहसा मैंने पाया कि मैं खुद अपने सवालों
के
सामने खड़ा हूं और
उस मुहावरे को समझ गया हूं
जो आजादी और गाँधी के नाम पर चल रहा है
जिससे न भूख मिट रही है, न मौसम
बदल रहा है।"

कवि देखता है कि–

"लोग बिलबिला रहे हैं
पेड़ों को नंगा करते हुए
पत्ते और छाल खा रहे हैं
मर रहे हैं
दान कर रहे हैं
जलसों–जुलूसों में भीड़ की पूरी ईमानदारी से
हिस्सा ले रहे हैं और
अकाल को सोहर की तरह गा रहे हैं
झुलसे हुए चेहरों पर कोई चेतावनी नहीं है।"

धूमिल की दृष्टि में यह देश एक ऐसा जंगल है जिसमें भेड़िये का राज है। भेड़िया भेड़ों को खा रहे हैं, किन्तु मजे की बात यह है कि–

"जिनका आधे से ज्यादा शरीर
भेड़ियों ने खा लिया है
वे इस जंगल की सराहना करते हैं–
"भारत वर्ष नदियों का देश है।"
बेशक यह सवाल ही उनका हत्यारा है।
यह दूसरी बात है कि इस बार
उन्हें पानी ने मारा है।"

कवि को इस बात का गहरा दुःख है कि इस देश के लोग वास्तविकता नहीं समझते और न ही अनाज में छिपे उस आदमी की नीयत ही समझते हैं जो पूरे समुदाय से अपना गिजा वसूला करता है–कभी "गाय" से तो कभी "हाय" से। कवि मात्र दुःख ही जाहिर नहीं करता अपितु उन्हें होश में लाने का प्रयास भी करता है। वह उनसे सवाल पूछता है–

"वह कौन–सा प्रजातान्त्रिक नुसखा है
कि जिस उम्र में
मेरी माँ का चेहरा
झुर्रियों की झोली बन गया है
उसी उम्र की मेरे पड़ोस की महिला
के चेहरे पर

मेरी प्रेमिका के चेहरे–सा

लोच है।"

लेकिन उसकी बातों को लोग चुपचाप सुनते हैं, जिससे लगता है कि उसकी आंखों में विरक्ति है। वे तटस्थ या कि परस्त है। परिणामतः धूमिल सोचते हैं कि–

"इस देश में

पकता युद्ध की ओर दया

अकाल की पूँजी है।

क्रांति

यहाँ के अपंग लोगों के लिए

किसी अबोध बच्चे के

हाथों की जूजी है।"

धूमिल का यह निराशा का स्वर है–जो उनकी निम्न पूँजीवादी, भावनावादी क्रांतिकारिता से उपजी है। जल्द से जल्द क्रांति चाहने वाले लोग क्रांति के प्रति ईमानदारी एवं आस्था के बावजूद जल्द निराश भी हो जाते हैं। निराशा के ही कारण धूमिल ने यहां क्रांति को किसी अबोध बच्चे को जूजी की संज्ञान दी है।

सम्पूर्ण उत्तरी भारत में, विशेषकर उत्तर–प्रदेश में 1967 में भाषा–आन्दोलन हुआ। कम्युनिस्ट दलों को छोड़कर सभी ने उसका समर्थन किया था। धूमिल ने अपनी कविता "भाषा की रात" में यही दृष्टिकोण स्वीकार किया है–

"चन्द चालाक लोगों ने

बहस के लिये

भूख की जगह

भाषा को रख दिया है"

उनकी समझ में "यह भाषा की रात है", यहाँ चीजें आगे बढ़ने के बजाय पीछे हट रही हैं। वे देखते हैं कि–

"भाषा और भाषा की बीच की दरार में

उत्तर और दक्षिण की तरफ

फन पटकता हुआ

एक दोमुहा विषधर

रेंग रहा है

रोजी के नाम पर

रोटी के नाम पर

जगह–जगह जहर

फेंक रहा है।"

यहाँ स्मरणीय है कि तत्कालीन भाषा–आन्दोलन की प्रतिक्रिया में तमिलनाडु में हिन्दी–विरोधी आन्दोलन चल पड़ा था। उसे ही ध्यान में रखकर भाषा–आन्दोलन को दोमुंहा सांप कहा गया है जो हिन्दी एवं तमिल दोनों ही क्षेत्रों की जनता की रोजी–रोटी के नाम पर विषय उगल रहा है।

इस आन्दोलन में बेकारी की लपटों से जले–भुने बौखनाए नौजवान, जिनकी आंखों में रोजगार की नीछहीं ईंटों, का अक्स झिलमिला रहा है, रेल के डिब्बे तोड़ रहे हैं, किन्तु बनिये मस्त हैं, क्योंकि हर परिस्थिति से लाभ उठाना ही उनका उद्देश्य है। धूमिल यह सब देखते हैं, और जनता से कहते हैं–

"और वो देखो–

वह निहाल–तोंदियल

कैसा मग्न है

हुचुर–हुचुर हँस रहा है

भाड़े की भीड़ के अंधे जुनून पर

उसे, कतई, एतराज नहीं है

उसका कहना है कि लाभ और शुभ के बीच

सिंदूर तो है मगर लाज

नहीं है

.....

बिना किसी क्षोभ के

उसने अपने तख्यितयों के अक्षर

बदल दिए हैं

क्योंकि बनिया की भाषा तो सहमति की भाषा

है।"

धूमिल अपनी विचारधारा में बहते हुए इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि भाषा को ठीक करने से पहले आदमी को ठीक करना जरूरी है –

"भाषा उस तिकड़मी दरिन्दे का कौर है

जो सड़क पर और है

संसद में और है

इसलिए बाहर आ!

सड़क के अँधेरे से निकलकर सड़क पर आ!

भाषा ठोक्करने से पहले आदमी को ठीक कर

आ आने चौदहों मूर्खों से

बोलता हुआ आ।"

"संसद से सड़क तक" संकलन मे संकलित "नक्सलबाड़ी" कविता इस बात का प्रमाण है कि नक्सलबाड़ी आन्दोलन ने भी धूमिल को भीतर तक आन्दोलित किया था। यह कविता वर्णनात्मक न होकर सांकेतिक है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि इस वामपंथी उग्र उभार के कारण क्षुब्ध है। उसे इस बात का क्षोभ है कि लोग दक्षिणपंथियों की तरफ हैं और वामपंथ का साथ नहीं दे रहे हैं। अतः वे लोगों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं –

"यह एक खुला हुआ सच है कि आदमी

दायें हाथ की नैतिकता से

इस कदर मजबूर होता है

कि तमाम उम्र गुजर जाती है मगर गाँड

सिर्फ बायां हाथ धोता है।"

प्रस्तुत कविता में कवि अनेक प्रश्न करता हुआ सत्य को उद्घाटित करना चाहता है। वह दूसरे प्रजातन्त्र की तलाश करता है कि फिर एकदम वक्तव्य देने लगता है–

"और वह सड़क–

समझौता बन गई है कि जिस पर खड़े होकर

कल तुमने संसद को

बाहर आने के लिये आवाज दी थी

"नहीं" अब वहाँ कोई नहीं है

मतलब की इबारत से होकर

सब के सब व्यवस्था के पक्ष में

चले गए हैं।"

"नक्सलबाड़ी" कविता के सम्बन्ध में डॉ. हुकुमचन्द राजपाल का कहना है– "वस्तुतः खबरदार सरीखे शब्द प्रयोग पर धूमिल जन–सामान्य को कहीं आगाह करने के साथ आतंककारियों के भेष में मक्कारों को चेतावनी भी देता है। वैसे इस प्रकार की उग्रता, आक्रोश एवं विद्रोह उसका अनेक कविताओं में सार्थक अभिव्यक्ति पाता है।"

"पतझड़" शीर्षक कविता में देश में फैली हुई बेकारी पर धूमिल ने गहरी चोट की है। बेकारी का शिकार नौजवान अपनी खस्ता हालत में अपने देश के बारे में क्या सोचता है? अगर आप यह सही–सही जानना चाहते हैं तो आप धूमिल से मालूम कर सकते हैं, क्योंकि उन्होंने रोजगार दफ्तर से गुजरते हुए नौजवान को अपने कानों यह साफ–साफ कहते सुना है कि–

"इस देश की मिट्टी में

अपने जांगर का सुख तलाशना

अँधी लड़की की आँखों में

उससे सहवास का सुख तलाशना है।"

देश–प्रेम की भावना से भरा हृदय लिए जब कोई नवयुवक देश की वास्तविकता से परिचित होता है तो उसका–

"देश–प्रेम
बेकारी की फटी हुई जेब से खिसकर
बीते हुए कल में
गिर पड़ता है।"

स्वाधीनता के बीस साल बाद भी देश की क्या स्थिति है इसकी थोड़ी सी झलक "बीस साल बाद" शीर्षक कविता में मिलती है–

"दीवारों से चिपके गोली के छर्रों
और सड़क पर बिखरे जूतों की भाषा में
एक दुर्घटना लिखी गई है।
हवा से फड़फड़ाते हुए हिन्दुस्तान के नक्शे पर
गाय ने गोबर कर दिया है।"

स्वाधीनता का फल साधारण जनता को चखने के लिए इतने दिनों बाद भी क्यों नहीं मिला–इसका रहस्य "धूमिल" प्रौढ़शिक्षा" शीर्षक कविता में जनता को बतलाते हैं। वे कहते हैं कि–

"तुम अपढ़ थे
गँवार थे
सीधे इतने कि बस
दो और दो चार थे।"

मगर "सुराजिए" अपढ़–गँवार नहीं, अपितु चालाक थे। वे–

"आजादी के बाद के अँधेरे में
अपने पुरखों का रंगीन बलगम
और गलत इरादों का मौसम जी रह थे
अपने–अपने दराजों की भाषा बैठकर
गर्म कुत्ता खा रहे थे
सफेद घोड़ा पी रहे थे।"

अतः धूमिल देश की अपढ़ किसान जनता को समझाते हैं कि देश का शासक वर्ग तुम्हें धोखा देता है। "किसान सच्च पृथ्वी पुत्र है", "वह संसार का अन्नदाता है" आदि वाक्य शासकों द्वारा किसानों की प्रशंसा में कहे जाते हैं। धूमिल किसानों को आगाह करते हैं–

"मगर तुम्हारे लिए कहा गया हर वाक्य
एक धोखा है
जो तुम्हें दलदल की और ले जाता है।"

कविता के अन्त में धूमिल देश के अपढ़ प्रौढ़ किसानों को शिक्षा देते हैं कि–

"इसीलिए मैं फिर कहता हूँ कि हर हाथ में
गीली मिट्टी की तरफ हाँ–हाँ मत करो
तनो
अकड़ो
अमरबेलि की तरह मत जियो
बदलो–अपने–आपको बदलो
यह दुनिया बदल रही है।"

"पटकथा" धूमिल की सबसे लम्बी कविता है। इस कविता की प्रेरणा धूमिल को संभवतः मुक्तिबोध की लम्बी कविता "अंधेरे में" से मिली है। लेकिन मुक्तिबोध की–सी गहराई, गहनता, अर्धगरिमा, तनाव और जटिल बुनावट इस कविता में नहीं आ सकी है। कारण शायद यह है कि मुक्तिबोध अपेक्षाकृत अधिक सजग, प्रतिबद्ध और एक साथ समान रूप से अन्तर्मुख कवि है। धूमिल मुख्यतः बहिर्मुख कवि है, फिर भी उनकी वह कविता अन्तर्मुख आन्तरिक विश्लेषण से सर्वथा रिक्त नहीं है। यत्र–तत्र उसका पुट दिखाई पड़ती है। अपने व्यापक वस्तुगत आयाम और त्वरित तरल प्रवास के कारण, साथ ही ज्वलन्त बिम्बों के प्राचुर्य के

कारण यह कविता धूमिल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयास है। इस लम्बी कविता के सम्बन्ध में डॉ. हुकुमचन्द राजपाल लिखते हैं– "काव्य–विकास की दृष्टि से यह रचना संश्लिष्ट क्या का आश्रय भी लेती है। इसके प्रारम्भ में कवि बाहर जाने में "अभिव्यक्ति" के खुले आयाम की पुष्टि करता हुआ देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति–पश्चात् की स्थिति को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत करता है। इसमें आजादी के प्रति एक विशिष्ट भाव की ओर संकेत है– कवि पर्याप्त समय की प्रतीक्षित स्वतन्त्रता प्राप्ति पर अपने राजनेताओं से बदलाव सुधार की कामना रहा– अपने मान्य नेता नेहरू को आदर–सम्मान देता रहा, पर समस्याएं घटने के स्थान पर दिनों–दिन विकट रूप धारण करती गयीं। चारों ओर देश में एक प्रकार का शोषण का वातावरण व्याप्त हो गया। इसमें कवि ने कई बार आजादी का सही प्रतीक्षित वांछित, अर्थ खोजने का प्रयास किया, पर हाथ लगा–आग, आंसू और हाय का तथ्यहीन मिश्रण। हिन्दुस्तान के माध्यम से देश की वस्तु–स्थिति को नाटकीय धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। पूँजीवादी दिमाग के कारण सुधार के स्थान पर शोषण होता रहा। चुनाव के नाम भी एक छलावा हाथ लगा। धीरे–धीरे उसे वास्तविकता का बोध चेहरों को सही रूप में पहचानने से होता है–संसद और जनता का सही अर्थ जानने के लिये वह रचना की अनेक सन्दर्भों में प्रस्तुत करता है।"

इस कविता में स्वाधीन भारत की आशा–निराशा एवं दुर्दशा की कथा कही गयी है। प्रारम्भ में काव्यनायक आजादी, जनतंत्र, वन–महोत्सव, शान्ति, संस्कृति आदि को प्यार से देखता है और इन्तजार करता है कि–

"हर शंका और हर सवाल का
एक ही जवाब था
यानी कि कोट के बटन–होल में
महकता हुआ एक फूल गुलाब का।"

पं. नेहरू के शासन–काल में "योजनाएँ चलती रहीं/ बन्दूकों के कारखानां में जूते बनते रहे" जिसका रहस्य 1962 के चीन–भारत संघर्ष में खुलता है।

काव्यनायक की दृष्टि में अपना देश कैसा है? वह कहता है–

"हिमालय से लेकर हिन्द महासागर तक फैला
हुआ
जली हुई मिट्टी का ढेर है
जहाँ हर तीसरी जुबान का मतलब
नफरत है।
अन्धेर है।"

और जनता क्या है ?

"एक भेड़ है
जो दूसरों की ठण्ड के लिये
अपनी पीठ पर ऊन की फसल ढो रही है।"

"पटकथा" का काव्यनायक देखता है कि यहाँ–

"हर तरफ धुआँ है
हर तरफ कुहासा है
जो दातों और दलदलों का दलाल है
वही देशभक्त है।"
2. "यहाँ कायरता के चेहरे पर
सबसे ज्यादा रक्त है।"
3. "जिसके पास थाली है
हर भूखा आदमी
उसके लिये सबसे भद्दी गाली है।"

ऐसी स्थिति में वह खोई हुई आजादी का अर्थ ढूँढ़ते हुए घूमता रहता है और जगह–जगह पर उस लोक–चेतना को टेरता है जो उसे दोबारा

जी सके, शांति दे सके और उसके भीतर–बाहर का जहर पी सके।

काव्य नायक हर रोज देखता है कि व्यवस्था की मशीन का कोई पुर्जा गरम होकर अलग छिटक गया है और ठण्डा होते ही फिर कुर्सी से चिपक गया है। उसे कोई अपना हमदर्द नहीं दिखता। उसका दावा है कि–

"मैंने एक–एक को परख लिया है
मैंने हर एक को अवाज दी है
हरेक का दरवाजा खटखटाया है
मगर बेकार.....
मैंने जिसकी पूँछ उठाई है उसको मादा पाया है
वे सबके सब तिजोरियों के दुभाषिये हैं
वे वकील हैं
वैज्ञानिक हैं
अध्यापक हैं
नेता हैं
दार्शनिक हैं
लेखक है
कलाकार हैं
यानी कि
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है।"

काव्यनायक का विश्वास है कि कांग्रेस का समाजवाद धोखा है। वह यह बात सारी जनता को बताता है। उसका कहना है कि–

"समाजवादी
उनका जुबान पर अपनी सुरक्षा का एक आधुनिक मुहावरा है।
मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
माल गोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिन "आग" लिखा है।
और उनमें बालू की पानी भरा है।"

धूमिल ने कांग्रेसी समाजवाद के लिये यहाँ जो उपमान प्रस्तुत किया है, उससे अधिक सटीक और व्यंजक उपमान साहित्य में दुर्लभ है।

यह काव्यनायक यह नहीं मानता है कि भारतीय–संसद देश की धड़कन को प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण है। उसका साफ कहना है कि–

"अपने यहाँ संसद
तेली की वह घानी है
जिसमें आधा तेल है और आधा पानी है।"

काव्यनायक ने कई–कई रातें जाग–जागकर गुजारीं। एकान्त में मनन किया किन्तु पाया", वही चिपरिचित अंधकार", "संशय की अनिश्चियग्रस्त ठण्डी मुद्राएँ" और "सन्नाटा", अतः वह अन्त तक यही महसूस करता है कि–

"घृणा में डूबा हुआ सारा–का–सारा देश
पहले की तरह आज भी
मेरा कारागार है।"

दरअसल "पटकथा" में भारतीय नागरिकों की स्वातंत्रयोत्तर दशा, आकांक्षा, आशा, उद्योग और नियति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। जिसमें आन्तरिक जीवन और बाह्य जीवन का पूरा दृश्य उभरता है, नये मूल्यों और शोषण के क्रमों मूढ़ता की वर्तनियों और घात व्यवहारों को रेखांकित किया जा सकता है। नग्नता तक बढ़ी आर्थिक बेहाली, मृतकों के प्रति संवेदनशील उपेक्षा, परमवीरता दिखाने वालों की पत्नियों को प्रदान किये जाते तमगों की विडम्बना, असुरक्षित स्थितियों में सधवाओं के मंगलगीत गाने के पीछे छिपी अनजानेपन की कारूणिक विडम्बना पूरे देश

में श्मशान में बदल जाने के अप्रियार्थ स्पष्ट है। फिर भी विडम्बना यह है कि जनता मूढ़ बनी भेड़–सी दूसरों–शीर्षक वर्गों के लिये अपना होना और करना सार्थक कर रही है। कुल मिलाकर जनता एक शब्द है। देश की आजादी के मोहक स्वप्न के टूटने और मोहभंग के दो–दो झटकों–भारत–भारत–चीन युद्ध और भारत–पाक युद्ध के बाद देश, जनता और जनतंत्र की लोकतन्त्री मूल्यता–सी विघटित स्थितियों, विश्वशांति और पंचशील के सूत्र का क्रूर, नंगा, हतप्रभता के बंजर में फेंकने वाला यथार्थ परिदृश्य– "पटकथा" का विस्तृत–फलक है। इसे उकेरेने में कवि ने अनुभवों के स्मृत रूपों के साथ यथार्थ–कल्पना का आश्रय भी लिया है, जिससे ऐतिहासिक बोध के गहराने से विडम्बनात्क कौण उभर आए हैं। कुल मिलाकर देखा जाए तो यह कविता सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का काव्यात्मक लेखा–जोखा है।

"कल सुनन मुझे" एवं "सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र" काव्य–संकलनों में "रोटी और संसद" "किस्सा–जनतंत्र", "आतिश के अनार सी वह लड़की", "सिलसिला", "हत्यारे", "वापसी", "लोहसांय", एवं "अंतिम कविता" सर्वाधिक चर्चित में उल्लेखनीय कविताएँ हैं। इनके आधार पर धूमिल के काव्यात्मक विकास की पहचान की जा सकती है। इन दोनों संकलनों की कविताओं में "संसद से सड़क तक" संग्रह में प्रकाशित कविताओं की अपेक्षा कथ एवं टेकनिक की दृष्टि से अन्तर है। "कल सुनना मुझे" और "सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र" की कविताओं का संकलन सम्पादकों द्वारा किया गया है। रचनाकाल का कहीं उल्लेख नहीं है। अतः रचनाओं का विकास–क्रम स्पष्ट नहीं हो पाता। यह भी सम्भव है कि इन संग्रहों की कुछ कविताओं को धूमिल ने कुछ विशेष स्थिति में लिखा होगा पर उसका प्रकाशन उन्होंने उचित नहीं समझा हो। इसलिए प्रथम संग्रह का धूमिल इन बाद के कविता–संग्रहों के धूमिल से भिन्न है। किन्तु बाद की कविताओं में धूमिल के कवि का क्रांतिकारी एवं विद्रोही रूप अधिक मुखर प्रतीत होता है।

"रोटी और संसद" धूमिल की एक लघु कविता है। किन्तु यह हमारे समक्ष एक बड़ा और महत्वपूर्ण प्रश्न उठाती है। कविता इस प्रकार है –

"एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ–
"यह तीसरा आदमी कौन है ?"
मेरे देश की संसद मौन है।"

यदि हम धूमिल के सम्पूर्ण कृत्तिव के सन्दर्भ में इस कविता पर विचार करें तो हमारे सामने कुछ प्रश्न स्वतः आ जाते हैं। एक तो यह कि क्या धूमि की कविता इस तीसरे आदमी को दण्डित करा सकी ? दूसरा यह कि क्या तीसरे आदमी ने रोटी से खेलना बन्द कर दिया ? स्पष्ट है ऐसा कुछ नहीं हुआ, किन्तु इतना निश्चित है कि जागरूक निगाहों की एक अनुदिन बढ़ती फौज उस तीसरे आदमी को घूरे जा रही है और निगाहों की फौज बढ़ती जा रही है। इसी को धूमिल की कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि कहा जा सकता है।

धूमिल का काव्य उनके समकालीन परिवेश का ऐसा एक्स–रे है जहाँ एक ओर अभावग्रस्त जिन्दगी के मर्मस्पर्शी अक्स हैं वहीं दूसरी ओर समाज की स्थिति, गतिहीनता, जर्जरता, विकृतियों और विडम्बनाओं को बखूबी समझा जा सकता है। "किस्सा जनतन्त्र" कविता को इस सन्दर्भ में देखा जा सकता है। यह एक

साधारण परिवार के अभावग्रस्त जीवन की सुन्दर एवं सशक्त अभिव्यक्ति है। सारी उम्र चमकने की कोशिश में धूमिल का एक भी शब्द यहाँ तक की पीतल का शब्द भी मैला या पीला नहीं रहने पाया, वह भी माँजकर चमका दिया गया। गरीबी के चित्र गैर गरीब लोगों ने खोंचे हैं, गरीबी झेलने वालों ने खींचे हैं, पर गरीबी की भाषित सम्पन्नता में जीने वाले शायद अकेले धूमिल हैं जिनकी' –

"करछुल
बटलोही से बतिती है और चिमटा
तवे से मचलता है
चूल्हा कुछ नहीं बोला
चुपचाप जलता है और जलता रहता है
उसके आगे थाली आती है
कुल रोटी तीन
खाने से पहले मुँहदुब्बर
पेटभर
पानी पीता है और लजाता है।
कुल रोटी तीन
पहले उसे थाली खाती है
फिर वह रोटी खाता है।"

करछुल और बटलौही का क्रिया–कलाप और बाद में रोटी–थाली और आम आदमी के बीच का सम्बन्ध आदमी की आर्थिक–सामाजिक स्थिति की ओर स्पष्ट संकेत करता है। आर्थिक विवशताओं के वशीभूत हो अधपेट भोजन प्राप्त करने वाला व्यक्ति पहले पेटभर पानी पीता है और भोजन करने बैठता है–कैसी विडम्बनामयी स्थिति है ? इतना ही नहीं होता कि इस आर्थिक विवशता में घुटते हुये व्यक्ति की मानवीय संवेदनाएँ तक खण्डित होने लगती हैं। आर्थिक परिस्थितियों के दबाव के कारण स्नेह–सम्बन्ध तक समापन की ओर बढ़ने लगते हैं। इस अभाव की दर्दनाक परिणति यह होती है कि आदमी के घर से बाहर निकल जाने पर लालबत्ती वाले चौराहे पर जब वह रुकता है, तो "होले से एक दर्द हिरदै को हूल" जाता है–

"ऐसी क्या हड़बड़ी की जल्दी में पत्नी को
चूमना–
देखो, फिर भूल गया।"

धूमिल कहीं–कहीं जो कहना चाहते हैं, उसे कहीं भी उपस्थित न रखकर एक "पेथास" की सृष्टि करते हैं, जिससे पाठक के भीतर आक्रोश–सिक्त करुणा अपने आप जागती है। "किस्सा जनतंत्र" कविता में आंगड़–बांगड़ खेलते बच्चे, सीमित संख्या में रोटी बोलती और उसे परिवार के सदस्यों से जोड़–भाग करती औरत, दर्बे में आकर थाली द्वारा ही खा लिया गया और अंत्तः खटर–पटर एक ढढ्ढा साइकिल पर भागता आदमी अपने समग्र चित्र से एक ऐसी अभावमुग्ध, आकृष्ट और स्नेह–सिक्त करुणा को जन्म देते हैं, जिनसे कवि या तो पूर्णतः तटस्थ है या फिर इन्हीं में अपने अस्तित्व को खोकर कहीं डूब गया है। गरीबी की भाषिक सम्पन्नता का अन्यतम उदाहरण उक्त रचना को इस आधार पर माना जा सकता है कि एक अभावग्रस्त जीवन को भी कवि सार्थक शब्द दे सकता है। वस्तुतः वैभव–सम्पन्न जीवन का वर्णन करना कवि के लिये अपेक्षाकृत आसान काम होता है, परन्तु विपन्नता से ग्रस्त जीवन का चित्रण करना कठिन होता है। क्योंकि वैभव सम्पन्न जीवन में भावात्मक प्रसंगों के वर्णन के लिये अधिक अवसर होता हैं जो भौतिक सुविधाओं के कारण उपलब्ध होते हैं। लेकिन इन्हीं सुविधाओं के प्रभाव के कारण विपन्नता–ग्रस्त जीवन में वे अवसर उपलब्ध नहीं होते। सीधी–सादी जिन्दगी को काव्य का विषय बनाना इसलिये भी कठिन होता है कि उसके वर्णन के लिये शब्द नहीं सूझते। भाषा सहायक नहीं होती। यदि उक्त कठिन कार्य करने में

किसी को सफलता मिली है तो उसकी भाषा की समृद्धि संदेह से परे की वस्तु होती है। ऐसे ही संदेह से परे की वस्तु है धूमिल की काव्य भाषा की समृद्धि। किसी समय ग्रामीण जीवन की भौतिक वैभव की पूर्ति प्रवृत्ति के शाश्वत उपादानों को जुटाकर की जाती थी। किन्तु आधुनिक कवियों ने उन्हें घिसे–पिटे जानकर त्याग दिया। ऐसे सभी उपादानों को तिलांजलि देकर भी अभावग्रस्त जीवन पर मर्मस्पर्शी कविता लिखने के लिये भाषाई जादूगरी के अलावा भला और क्या कहा सकता है ? यही जादूगरी धूमिल की "किस्सा जनतन्त्र" में मौजूद है।

धूमिल के कवि–कर्म के विकास–क्रम के सन्दर्भ में गोविन्द उपाध्याय लिखते हैं कि सन् 1970 के लगभग उनमें काफी बदलाव आने लगा था। उन्हें ऐसी सनक सवार हो गई कि दुनिया को बदल देना है। उपाध्याय जी लिखते हैं–इस जमाने में उनकी निर्भीकता तथा आक्रोश लगता था कि प्रमाद की सरहद को छता है।..... इसी दौर में उन्होंने "कविता श्रीकाकुलम" की रचना की थी। इन दिनों वे हिटलर, मसोलनी, स्तालिन, लेनिन आदि के बारे में विशद चर्चा करते थे। अपना विरोध सहन करने का धैर्य उनमें कम होता जा रहा था।" धूमिल वर्तमान स्थिति की अविश्वनीयता एवं अकल्पनीयता का मात्र साक्षात्कार ही नहीं करते हैं, अपितु वे सही समय की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा भी करते हैं। भविष्य उनके लिये सुनहरा हैं, क्योंकि वर्तमान में वे संघर्षरत हैं, व्यवस्था को बदल डालने के लिये तत्पर हैं। धूमिल का यह मानना है कि परिवर्तन तभी सम्भव है जब व्यक्तियों की समक्ष परिष्कृत होगा। समझ के परिष्कृत होने पर ही दिशाहीनता एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति दूर होती है और व्यक्ति व्यवस्था के सही शत्रु की पहचान करने में समर्थ हो जाता है। तभी कवि को विश्वास होता है कि मात्र बैठे रहने से स्थिति नहीं बदल सकती। उस स्थिति को बदलने के लिये अनिवार्य है। धूमिल "आतिश के अनार सी वह लड़की" में यह स्वीकारते हैं कि संघर्ष को स्थिति को झेले बिना इस सड़ी–गली व्यवस्था से मुक्ति नहीं मिल सकती–

"कल तू जहाँ आतिश के अनार की तरह फूटकर
बिखर गई है ठीक वहीं से हम
आजादी की वर्ष गाँठ का जश्न शुरू करते हैं।"

धूमिल शक्ति के माध्यम से व्यवस्था परिवर्तित करना चाहते हैं और इसके लिये सभी नारियों को यह कहने से नहीं चूकते–

"ओ प्यारी भाभियों।
ओ नटखट बहिनों।
सिंगार दान को छुट्टी दे दो
आईने से कहो वह कुछ देर अपना अकेलापन
घूरता रहे
.....
यह चोटी करने का वक्त नहीं और न बाजार का
?
बालों को ऐंठकर जूड़ा बाँध लो
और सब के सब मेरे पास आ जाओ
देखो, मैं एक नयी और ताजा खबर के साथ
घर की दहलीज पर खड़ा हूँ।"

धूमिल की चेतना का क्रमिक विकास "सिलसिला", "हत्यारे" तथा "लोहसाँय" जैसी कविताओं में देखने को मिलता है। "सिलसिला" कविता आरम्भ आन्दोलन की सूचना से शुरू होती है, जहाँ कवि स्पष्ट शब्दों में घोषणा करता है–

"हवा गरम है
और धमाका एक हल्की–सी रगड़ का
इन्तजार कर रहा है।"

कवि का विश्वास है कि अब जंगल नहीं सूखेगा, पूर्ण क्रान्ति भले ही हो सके पर अपनत्व की प्राप्ति अपने आपमें बहुत बड़ी उपलब्धि है। इसे कवि ने दरवाजे तथा मेज के माध्यम से व्यक्त किया है। वह कविता को तख्ता पलटने के सिलसिले की शुरुआत से करता है तथा हरियाली पर हमला करने की प्रेरणा देता है। इतना ही नहीं, कवि कहता है–

"जड़ों से कहो कि अंधेरे में
बेहिसाब दौड़ने के बजाय
पेड़ों की तरफदारी के लिये
जमीन से बाहर निकल पड़ें
बिना इस डर के कि जंगल
सूख जायेगा।"

कवि ऐसी क्रान्ति एवं आन्दोलन की सीमा से भी परिचित है, फिर भी इसके लिये लोगों में स्फूर्ति–चेतना का आवाह्न करता है–

"यह सही है कि नारों को
नयी शाख नहीं मिलेगी
और न आरा मशीन को
नींद की फुरसत
लेकिन यह तुम्हारे हक में है
इससे इतना तो होगा ही
कि रुखानी की मामूली–सी गवाही पर
तुम दरवाजे को अपना दरवाजा
और मेज को
अपनी मेज कहा सकोगे।"

वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को धूमिल अस्वास्थ्य ग्रसित देखते हैं। व्यक्ति को यह व्यवस्था किस प्रकार तोड़ रही है, जिस प्रकार उसका व्यक्तित्व चूर–चूर हुआ जा रहा है। इसकी तीव्र अनुभूति कवि की होती है और वह तनावग्रस्त ही क्रुद्ध हो जाता है। कवि यह बात भी अच्छी तरह जानता है कि हम हर क्ष्ज्ञण इस अस्वस्थ्यग्रसित व्यवस्था जकड़ में गिरफ्त हैं। "हत्यारे एक" शीर्षक कविता में कवि कहता है–

"वे तुम्हारी बातों में शामिल है
हर वक्त वे तुम्हारा पीछा कर रहे हैं
चाय घर में तुम उनके बारे में
बतिया रहे हो।"

धूमिल स्पष्ट शब्दों में यह भी कहते हैं कि उनके बारे में बतियाना हमारी आदत बन गई है। वे डाकखाने में पत्र लिखते हुए, पत्नी को चूमते हुए, बच्चों को स्कूल छोड़ते हुए हर वक्त हमारा पीछा करते हैं। इसी कविता के अन्त में वे कहते हैं–

"वे तुम्हारे सामने एक आईना रखते हैं और
तुम गुर्राने लगते हो
अपने खिलाफ ! एक बेगानी आवाज बनकर
और अब तो चुनाव हो रहा है
वे तुम्हारी कटी हुई जेबों के नाम पर
अपना पर्चा दाखिल करने वाले हैं
अगले मतदान में।"

ऐसी स्थिति में हमें क्या करना होगा, इसका संकेत भी धूमिल "हत्यारे दो" शीर्षक कविता में देते हैं। साथ ही यह भी बताते हैं कि हमारे लिए यह जान लेना नितान्त आवश्यक है कि असली अपराधी कौन है ? क्या वह जो हमें सामने नजर आता है, या कि वह जो उसको हमारे सामने भेजता है ? "हत्यारे" "दो" में वे कहते हैं–

"हत्यारे एकदम सामने नहीं आते
वह पुराना तरीका है एक आदमी को मारने का
अब एक समूह का शिकार करना है
हत्यारे एकदम सामने नहीं आते

उनके पास हैं कई–कई चेहरे
कितने की अनुचर और बोलियाँ
एक–से–एक आधुनिक और निरापद तरीके
ज्यादातर वे हथियार की जगह तुम्हें
विचार से मारते हैं।"

इनके विरुद्ध जब भी तेजाब की तरफ हवाएं खौलती हैं तो हर जुबान पर एक जानलेवा शब्द "क्रान्ति" जलने लगता है। किन्तु जब रोटी की मार शुरू होती है तब निचला जबड़ा ऊपरी जबड़ों को पीस के रख देता है। इनकी मजबूत पकड़ से किस प्रकार पूर्णतः मुक्त हुआ जा सकता है, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसके सम्बन्ध में धूमिल अपनी परवर्ती कविताओं में गम्भीरता से सोच रहे थे। इसी कविता के अन्त में वे लिखते हैं–

"हत्यारों ने फेंक दिए हैं
सारे शब्द और विचार
उन्होंने हथियार उठा लिये हैं इस वक्त
इस वक्त तुम्हें तय करना है कि तुम
क्या करोगे ?"

हमें क्या करना चाहिए ? इस सम्बन्ध में वे चुप नहीं है बल्कि "वापसी" शीर्षक कविता में इसका स्पष्ट उत्तर रोटी के संघर्ष में दौड़–धूप के पश्चात् घर लौटे आदमी के मुँह से इन शब्दों में दिलवाया है–

"चूल्हे का कोयला और पतीली की दाल
बुदबुदाते हैं–रोटी का क्या हुआ ?
और ऑचल ठीक करती है
एक कनफटी कमीज
खूंटी पर झूलती है दौड़–धूप के बाद
बेतहाशा लौटे आदमी का मुंह
धोती है बाल्टी। चौका बुलाता है
"ओह ! आह !! अच्छे बच्चे रोते नहीं"
पिता का दल मर्द की तरह टूटता है
और चूल्हे की आग
उसकी आँखों में जलने लगती है
हे भाई हे। अगर चाहते हो
कि हवा का रुख बदले
तो एक काम करो–
हे भाई है !!
संसद जाम करने से बेहतर है–
सड़क जाम करो।"

इस पूरी कविता से गुजर कर लगता है कि ढढ्ढा साइकिल पर रोटी की तलाश में निकला "किस्सा जनतंत्र" का "मुहँदुब्बर" घर लौटकर "वापसी" कविता में इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि हम चाहते हैं कि हवा का रुख बदलें तो इसके लिये संसद जाम करने के स्थान पर सड़क जाम करना ज्यादा बेहतर है। इस प्रकार की पंक्तियाँ धूमिल की बदलती मानसिकता तथा दृष्टि–विकास की ओर भी संकेत करती हैं। कवि को "लोहसाँय" कविता को भी इसी सन्दर्भ में देखना होगा। इस कविता में धूमिल का "टेकू बनिहार" धूमिल के लुहार कवि को आगाह करता है–

"हँसुये पर ताव जरी ठभ्क तरे देना
कि धार मुड़े नहीं आजकल
छिनार निहाई ने
लोहे की मनमापिक हनने के लिए
हथौड़े से दोस्ती की है।"

धूमिल अपने परिवेश से पूर्णतः जुड़े हुए कवि हैं। अतः सृजनशील, शोषित, उत्पीड़ित एवं मेहनतकश आम आदमी का चित्र पूरी तरह उनकी कविता में उभर आया है। अपने सम्पूर्ण परिवेश में धूमिल

यथार्थ की ठोस जमीन पर खड़े रहे हैं। उनकी कविता उस संत्रस्त–प्रतीड़ित मानव का दर्द मुखरित करती रही है जो टूटता–छुटता हुआ जीने की यन्त्रणा को ढोता है। उनकी अन्तिम कविता से यह बात और सही प्रतीत होती है कि कविता का उद्देश्य मात्र मनोरंजन नहीं, उसका एक–मात्र लक्ष्य आज के व्यक्ति की व्यथा–कथा कहना है–

"शब्द किस तरह
कविता बनते हैं
इसे देखो
अक्षरों के बीच गिरे हुए
आदमी को पढ़ो
क्या तुमने सुना कि यह
लोहे की आवाज है या
मिट्टी में गिरे हुए खून का रंग
लोहे का स्वाद
लोहार से मत पूछो
उस घोड़े से पूछो
जिसके मुँह में लगाम है।"

धूमिल की इस अन्तिम कविता को पढ़कर कविता का प्रत्येक पाठक यही कह सकता है कि कवि की वेदना रोमानी वेदना नहीं। उनकी कविताओं से मिलने वाली पीड़ा किसे प्रेम–पात्र के स्मरण में, कसक के रूप में उत्पन्न नहीं होता और न ही यह पश्चाताप या आत्म–परिस्कार की वेदना है जो अपराधबोध से पीड़ित लोगों में होती है। इसे तो वास्तव में लोक–वेदना कहना चाहिए, क्योंकि उसकी प्रवृत्ति सामुदायिक है, वैयक्तिक नहीं।

धूमिल के काव्य–विकास के क्रमिक विवेचन से स्पष्ट है कि धूमिल के काव्य का आयाम अत्यन्त व्यापक है। उसके भीतर समूचा देश है। देश की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति परिस्थिति है। अनेक प्रकार की समस्याएं हैं–व्यक्ति की और देश की भी। कांग्रेसी समाजवाद और उसके पूँजीवादी जनतंत्र के खोखलेपन का भण्डाफोड़ है और मोचीराम के वर्गचेतन चरित्र की झाँकी भी है। भाषा–आन्दोलन का चित्र है तो अकाल का भी चित्र है। और उनके रहस्यमय कारणों का मार्मिक उद्घाटन भी वहाँ विद्यमान है। कहा जा सकता है कि धूमिल का काव्य स्वाधीन भारत की अन्तर्दशा का एक सीमा तक एक्स–रे चित्र प्रस्तुत करता है। वह स्वाधीन भारत की व्यवस्था की कथा है। स्वाधीन भारत की आशा–आकांक्षा और निराशा की ज्वलन्त इतिहास–गाथा है। युग–अवस्था में ही काल–कवलित हो जाने के कारण धूमिल हिन्दी और हिन्दी–जनता को कम ही दे सकते हैं, किन्तु जो कुछ उन्होंने दिया है उसमें इतनी अग्नि है कि यह आशा की जा सकती है कि उसकी ज्योति दीर्घकाल तक धूमिल नहीं होगी।

निस्सन्देह धूमिल प्रगतिशील धारा के एक महत्वपूर्ण कवि हैं, किन्तु यह याद रखना चाहिए कि उनकी कविताओं में सर्वहारा का न के बराबर चित्रण है। यह उनकी प्रगतिशीलता और उनके मार्क्सवाद की सीमा है।

धूमिल के बारे में अशोक बाजपेई का कथन है कि– "धूमिल मात्र अनुभूति के नहीं, विचार के भी कवि हैं। उनके यहाँ अनुभूतिपरकता और विचारशीलता, अहसास और समझ, एक–दूसरे से घुले–मिले हैं और उनकी कविता केवल भावात्मक स्तर पर नहीं बल्कि बौद्धिक स्तर पर भी सक्रिय होती है।" धूमिल की कविताओं के ऊपर की गयी व्याख्या के आधार पर कहा जा सकता है कि अशोक बाजपेई का कथन बिल्कुल ठीक है। जिन्दगी के जलते हुए अनुभवों को धूमिल की विचारशीलता ने कविताओं के रूप में ढाला है। यही कारण है कि उनकी कविताओं से विद्रोह की लपटें निकलती रहती हैं। कोमलता, क्रांति और माधुर्य के प्रेमी काव्य–रसिकों और

आलोचकों को वे लपटें दुःख पहुंचाती हैं। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि ऐसे लोगों को धूमिल का काव्य "काव्याभास" लगे। वस्तुतः ऐसे लोग सांच की आंच से घबराते हैं।

धूमिल की अभिव्यक्ति एकदम खरी है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वे तेज स्वभाव के आदमी रहे होंगे। निर्भीकता उनकी कविता की भांति उनके चरित्र को भी एक खास खासियत रही होगी। वे जो कुछ अनुभव करते हैं, सोचते हैं, उसे कहने में जरा भी नहीं हिचकते। सत्ता पर चोट करने में चूकते नहीं और मौका पड़ने पर अपने को भी नहीं छोड़ते। अपनी कविता "एकान्त कथा" में उन्होंने स्वयं को इस रूप में चित्रित किया है–

"सड़कों पर होता हूँ
बहसों में होता हूँ
रह–रहकर चहकता हूँ
लेकिन दरबार वापस घर लौटकर
कमरे के अपने एकान्त में
जूते से निकाले गये पांव–सा महकता हूँ।"

यह आत्मलोचन का स्वर निश्चय ही मूल्यवान है।

आकार–विस्तार की दृष्टि से धूमिल ने लघु और दीर्घ दोनों प्रकार की कविताएँ लिखी हैं, किन्तु अधिकता लघु कविताओं की है। संघटन की दृष्टि से उनकी कविताओं में कुछेक अपवादों को छोड़कर बिखराव और फैलाव पाया जाता है। उनमें कसाव की कमी लगती है। दूसरे शब्दों में उनमें स्थैल्य पाया जाता है। निष्कर्ष यह कि धूमिल कलात्मकता के प्रति उतने सजग और प्रतिबद्ध नहीं हैं, जितना कि विचारों के प्रति है।

संदर्भ

- संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ. 23
- कल सुनना मुझे, धूमिल, पृ. 71
- सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र, धूमिल, पृ. –18
- "साठोत्तरी हिन्दी कविता : परिवर्तित दिशाएँ, लेखक डॉ. विजय कुमार पृ. 232
- कविता का वैचारिक वर्तमान, सं. डॉ. सुखबीर सिंह, पृ. 48
- आलोचना, सं. नामवर सिंह, अप्रैल–जून, 1975, पृ. 40
- आलोचना, सं. नामवर सिंह, अप्रैल–जून, 1975, पृ. 40–41
- आलोचना, सं. नामवर सिंह, अप्रैल–जून, 1975, पृ. 42
- समकालीन कविता और धमिल, डॉ. मंजुल उपाध्याय, पृ. 83–84
- आलोचना, सं. नामवर सिंह, अप्रैल–जून, 1975, पृ. 60
- संसद से सड़क तक धूमिल, पृ. 32
- संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ. 32–33
- लेखन, अक्टूबर 1982, पृ. 85
- आलोचना, सं. नामवर सिंह, अप्रैल–जून, 1975, पृ. 63
- कल सुनना मुझे की प्रस्तावना, मरणोत्तर धूमिलः एक कथा–यात्रा, राजशेखर पृ.11
- धूमिल की कविताए, सं. शुकदेव सिंह, अपने पिता के विषय में, रत्नशंकर, पृ. 12
- समकालीन बौध और धूमिल का काव्य, डॉ. हुमुमचन्द राजपाल, पृ. 134
- 18. धूमिल की कविताएं, रत्नशंकर का वक्तव्य "अपने पिता के विषय में", सं. डॉ. सुकदेव सिंह पृ. 12
- आलोचना, अप्रैल–जून, 1975, पृ. 65

- संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ. 107
- आलोचना, अप्रैल–जून 1975 में गोविन्द उपाध्याय का निबन्ध, धूमिलः कवि–कर्म का विकास–क्रम तथा कुछ संस्मरण, पृ. 66
- आलोचना, अप्रैल–जून, 1975, पृ. 66
- संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ. 62
- सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र, धूमिल, पृ. 7
- संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ. 41
- कटघरे का कवि धूमिल, डॉ. गणेश तुलसीराम अष्टेचर, पृ. 158
- समकालीन बोध और धूमिल का काव्य, डॉ. हुकुमचन्द राजपाल, पृ. 31
- संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ. 44
- समकालीन बोध और धूमिल का काव्य, डॉ. हुकुमचन्द राजपाल, पृ. 54
- संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ. 66
- समकालीन बोध और धूमिल का काव्य, डॉ. हुकुमचन्द राजपाल, पृ. 33–34
- संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ. 101
- संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ. 126–27
- आलोचना, अप्रैल, जून, 1975, पृ. 66–67
- कल सुनना मुझे, धूमिल, पृ. 24
- सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र, धूमिल पृ. 62
- कल सुनना मुझे, धूमिल, पृ. 80
- आलोचना, सं. डॉ. नामवर सिंह, अप्रैल, जून 1975, पृ. 30
- संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ. 23

Copyright © 2016, Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.